

ॐ

पंडित प्रवर टोडरमलजी की रहस्य पूर्ण चिट्ठी

॥ श्री ॥

सिद्ध श्री मुलतान नगर महा शुभ स्थान विषे साधर्मी भाई अनेक उपमा योग्य अध्यात्म रस रोचक भाई श्री खानचन्दजी, गंगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथदासजी, अन्य सर्व साधर्मी योग्य लिखतं टोडरमल के श्री प्रमुख विनय शब्द अवधारना । यहाँ यथा सम्भव आनन्द है, तुम्हारे चिदानन्द घन के अनुभव से सहजानन्दकी वृद्धि चाहिए ।

अपरंच तुम्हारो एक पत्र भाई जी श्रीरामसिंघजी भुवानीदासजी को आया था । तिसके समाचार जहानाबादतें और साधर्मियों ने लिखे थे । सो भाई जी ऐसे प्रश्न तुम सारिषे ही लिखें ! अवार वर्तमान काल में अध्यात्म के रसिक बहुत थोड़े हैं । धन्य हैं जे स्वात्मानुभवकी वात भी करै हैं, सो ही कहा है —

श्लोक—तत्प्रति प्रीत चित्तेन, येन वार्तापि हि श्रुता ।

निश्चितं सः भवेद्भव्यो, भाव निर्वाण भाजनम् ॥

पद्मनन्दि पंच विंशतिका । (एकत्व शीतिः २३)

अर्थ—जिहि जीव प्रसन्न चित्त करि इस चेतन स्वरूप आत्मा की बात ही सुनी है, सो निश्चय कर भव्य है । अल्पकालविषे मोक्ष का पात्र है । सो भाई जी तुम प्रश्न लिखे तिसके उत्तर अपनी बुद्धि अनुसार कुछ लिखिए है सो जानना और अध्यात्म आगम की चर्चा गर्भित पत्र तो शीघ्र शीघ्र देवो करो, मिलाप कभी होगा तब होगा । अर निरन्तर स्वरूपानुभव में रहना, श्रीरस्तु ।

अथ स्वानुभव दशाविषै प्रत्यक्ष परोक्षादिक प्रश्ननिके उत्तर बुद्धि अनुसार लिखिये हैं ।

तहाँ प्रथम ही स्वानुभव का स्वरूप जानने निमित्त लिखे हैं ।

जीव पदार्थ अनादितें मिथ्यादृष्टी है। सो आपापरके यथार्थ रूप से विपरीत श्रद्धान का नाम मिथ्यात्व है। बहुरि जिस काल किसी जीव के दर्शन मोह के उपशम, क्षयोपशम या क्षय तें आपापर का यथार्थ श्रद्धान रूप तत्त्वार्थ श्रद्धान होय, तब जीव सम्यक्ती होय है। यातें आपापरका श्रद्धानविषें शुद्धात्म श्रद्धान रूप निश्चय सम्यक्त गर्भित है। बहुरि जो आपापर का यथार्थ श्रद्धान नाहीं है अर जिनमतविषें कहे जे देव, गुरु, धर्म तिन ही कूं मानै है, अन्य मत विष कहे देवादि वा तत्वादि तिनको नाहीं मानै है, तो ऐसे केवल व्यवहार सम्यक्त करि सम्यक्ती नाम पावै नाहीं। तातें स्वपर भेद विज्ञान को लिये जो तत्त्वार्थ श्रद्धान होय सो सम्यक्त जानना।

बहुरि ऐसा सम्यक्ती होते सन्ते जो ज्ञान पंचेन्द्री व छठा मन के द्वारा क्षयोपशम रूप मिथ्यात्व दशा में कुमति कुश्रुतिरूप होय रहा था सोई ज्ञान अब मतिश्रुति रूप सम्यग्ज्ञान भया। सम्यक्ती जेता कछु जानै सो जानना सर्व सम्यग्ज्ञान रूप है।

जो कदाचित् घट पटादिक पदार्थनिकूं अयथार्थ भी जानें तो वह आवरण जनित उदय को अज्ञान भाव है। जो क्षयोपशम रूप प्रगट ज्ञान है सो तो सर्व सम्यग्ज्ञान ही है, जातें जाननेविषें विपरीत रूप पदार्थनिकों न साधै है। सो यह सम्यग्ज्ञान केवलज्ञानका अंश है। जैसे थोड़ा सा मेघ पटलविलय भये कुछ प्रकाश प्रगट है सो सर्व प्रकाश का अंश है।

जो ज्ञान मतिश्रुति रूप प्रवर्त्त है सो ही ज्ञान बधता बधता केवलज्ञान रूप होय है। इसलिये सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा तो जाति एक है। बहुरि इस सम्यक्ती के परिणामविषें सविकल्प तथा निर्विकल्परूप होय दो प्रकार प्रवर्त्तें। तहां जो विषय कषायादिरूप वा पूजा, दान, शास्त्राभ्यासादिक रूप प्रवर्त्तें सो सविकल्परूप जानना।

यहाँ प्रश्न—जो शुभाशुभ रूप परिणामते हुए सम्यक्तका अस्तित्व कैसे पाइए ?

ताका समाधान—जैसे कोई गुमास्ता साहू के कार्यविषे प्रवर्त्त है, उस कार्य को अपना भी कहे है, हर्ष विषाद को भी पावै है, तिसकार्य विषे प्रवर्त्तते अपनी और साहू की जुदाई कौं नाहीं विचारै है परन्तु अन्तरंग श्रद्धान ऐसा है कि यह मेरा कारज नाहीं । ऐसा कार्यकर्ता गुमास्ता साहूकार है परन्तु वह साहू के धन कूँ चुराय अपना मानै तो गुमास्ता चोर ही कहिए । तैसे कर्मोदय जनित शुभाशुभ रूप कार्यको करता हुआ तदरूप परिणामै, तथापि अन्तरंग ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नाहीं । जो शरीराश्रित व्रत संयम को भी अपना मानै तो मिथ्यादृष्टि होय । सो ऐसे सविकल्प परिणाम होय हैं । अब सविकल्प ही के द्वारकरि निर्विकल्प परिणाम होने का विधान कहिए है:—

वह सम्यक्ती कदाचित् स्वरूप ध्यान करने को उद्यमी होय है तहाँ प्रथम स्वपर स्वरूप भेद विज्ञानकरै; नो कर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म रहित चैतन्य चित्त चमत्कारमात्र अपना स्वरूप जानै; पीछे परका भी विचार छूट जाय, केवल स्वात्म विचार ही रहै है; तहाँ अनेक प्रकार निज-स्वरूपविषे अहंबुद्धि धारै है । मैं चिदानन्द हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ, इत्यादिक विचार होते संते सहज ही आनन्द तरंग उठै है, रोमांच होय है, ता पीछे ऐसा विचार तो छूट जाय, केवल चिन्मात्र स्वरूप भासने लागै; तहाँ सर्व परिणाम उस रूपविषे एकाग्र होय प्रवर्त्त । दर्शन ज्ञानादिक का वा नय प्रमाणादिकका भी विचार विलय जाय ।

चैतन्य स्वरूप जो सविकल्प ताकरि निश्चय किया था, तिस ही विषे व्याप्य व्यापक रूप होय ऐसे प्रवर्त्त जहाँ ध्याता ध्यायपनो दूर भयो । सो ऐसी दशा का नाम निर्विकल्प अनुभव है । सो बड़े नय चक्र ग्रन्थविषे ऐसे ही कहा है—

गाथा — तच्चरणे सण काले समयं बुज्झेदि जुत्ति मग्गेण ।

णो आराहण समये पच्चक्खे अणुहवो जब्बा ॥२६६॥

अर्थ तत्व का अवलोकन का जो काल ता विषे समय जो है शुद्धात्मा ताको जुत्ता जो नय प्रमाण ताकरि पहिले जानै । पीछे आरा-
धन समय जो अनुभव काल, तिहि विषे नय प्रमाण नाहीं है, जातें प्रत्यक्ष अनुभव है । जैसे रत्न की खरीद विषे अनेक विकल्प करै हैं, प्रत्यक्ष वाको पहिरिये तब विकल्प नाहीं, पहरने का सुख ही है । ऐसे सविकल्प के द्वारे निर्विकल्प अनुभव होय है ।

बहुरि जो ज्ञान पंच इन्द्री व छठा मन के द्वारे प्रवर्त्तै था सो ज्ञान सब तरफ सों सिमट कर निर्विकल्प अनुभव विषे केवल स्वरूप सन्मुख भया । जातें वह ज्ञान क्षयोपशमरूप है सो एक काल विषे एक ज्ञेय ही को जानै, सो ज्ञान स्वरूप जानने को प्रवर्त्या तब अन्य का जानना सहज ही रह गया । तहाँ ऐसी दशा भई जो बाह्य विकार होय तौ भी स्वरूप ध्यानी को कछु खबर नाहीं, ऐसे मतिज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया । बहुरि नयादिक के विचार मिटते श्रुतज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया । ऐसा वर्णन समयसार की टीका आत्मख्यातिविषे किया है तथा आत्म अवलोकनादिविषे है । इस ही वास्ते निर्विकल्प अनुभवकों अतेन्द्रिय कहिए है जातें इन्द्रीनका धर्म तौ यह है जो स्पर्श, रस, गंध और वर्ण कौ जानै सो यहाँ नाहीं अर मन का धर्म यह है जो अनेक विकल्प करै सो भी यहाँ नाहीं । तातें जब जो ज्ञान इन्द्री मन के द्वारे प्रवर्त्तै था सो ही ज्ञान अब अनुभवविषे प्रवर्त्तै है तथापि इस ज्ञान को अतेन्द्रिय कहिये है । बहुरि इस स्वानुभवकों मन द्वारे भी भया कहिए जातें इस अनुभवविषे मतिज्ञान श्रुतज्ञान ही हैं, और कोई ज्ञान नाहीं ।

मतिश्रुतज्ञान इन्द्री मनके अवलम्बन बिना होय नाहीं, सो इन्द्री मन का तो अभाव ही है जातें इन्द्रियका विषय मूर्त्तिक पदार्थ ही है । बहुरि

यहाँ मतिज्ञान है जातें मन का विषय मूर्तिक अमूर्तीक पदार्थ है, सो यहाँ मन सम्बन्धी परिणाम स्वरूपविषे एकाग्र होय अन्य चिन्ता का निरोध करै हैं तातें याकों मन द्वारै कहिये है ।

“एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानम्” ऐसा ध्यान का भी लक्षण है, ऐसा अनुभव दशाविषे सम्भवै है । तथा नाटक के कवित्तविषे कहा है—

दोहा:—वस्तु विचारत भाव सें, मन पावै विश्राम ।

रस स्वादित सुख ऊपजं, अनुभव याकौ नाम ॥

ऐसे मन बिना जुदा परिणाम स्वरूपविषे प्रवर्त्ता नाहीं तातें स्वानुभवकों मन जनित भी कहिए है, सो अतेन्द्रिय कहने में अरु मन जनित कहने में कुछ विरोध नाहीं; विवक्षा भेद है ।

बहुरि तुम लिखा “जो आत्मा अतेन्द्रिय है सो अतेन्द्रिय ही करि ग्रहा जाय” सो भाई जी, मन अमूर्तीक का भी ग्रहण करै है जातें मतिश्रुतज्ञान का विषय सर्व द्रव्य कहे हैं । उक्तं च तत्त्वार्थ सूत्रे—

“मति श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्व सर्व पर्यायेषु ।” (१-२६)

बहुरि तुमने “प्रत्यक्ष परोक्ष संबंधी प्रश्न लिखे” सो भाईजी प्रत्यक्ष परोक्ष के तो भेद हैं नाहीं । चौथे गुणस्थान में सिद्ध समान क्षायक सम्यक्त हो जाय है, तातें सम्यक्त तो केवल यथार्थ श्रद्धान रूप ही है । वह जीव शुभाशुभ कार्य करता भी रहै, तातें तुमने जो लिखा था कि “निश्चय सम्यक्त प्रत्यक्ष है और व्यवहार सम्यक्त परोक्ष है” सो ऐसा नाहीं है । सम्यक्त के तो तीन भेद हैं तहाँ उपशम सम्यक्त अरु क्षायक सम्यक्त तो निर्मल हैं, जातें वे मिथ्यात्व के उदय करि रहित हैं अरु क्षयोपशम सम्यक्त समल है । बहुरि इस सम्यक्तविषे प्रत्यक्ष परोक्ष भेद तो नाहीं हैं ।

क्षायक सम्यक्तीक शुभाशुभ रूप प्रवर्त्तता वा स्वानुभवरूप प्रवर्त्तता

सम्यक्त गुण तो सामान्य ही है तातें सम्यक्तके तो प्रत्यक्ष परोक्ष भेद न मानना । बहुरि प्रमाण के प्रत्यक्ष परोक्ष भेद हैं सो प्रमाण सम्य-
ग्ज्ञान है; तातें मतिज्ञान श्रुतज्ञान तो परोक्ष प्रमाण हैं और अवधि
मनःपर्यय केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ।

यथा:—“आद्ये परोक्षं । प्रत्यक्षमन्यत्” । (तत्त्वार्थ सूत्र १-११, १२)

ऐसा सूत्र कहा है तथा तर्क शास्त्रविषे प्रत्यक्ष परोक्ष का ऐसा
लक्षण कहा है—

“स्पष्टप्रतिभासात्मकंप्रत्यक्षमस्पष्टं परोक्षं ।”

जो ज्ञान अपने विषयकों निर्मलतारूप नीके जानै सो प्रत्यक्ष
अर स्पष्ट नीके न जानै सो परोक्ष; सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान का विषय
तो घना परन्तु एक ही ज्ञेय कों सम्पूर्ण न जान सकै तातें परोक्ष है
और अवधि मनःपर्यय ज्ञान के विषय थोरे हैं तथापि अपने विषयकों
स्पष्ट नीके जानै तातें एक देश प्रत्यक्ष है अर केवलज्ञान सर्व ज्ञेयकों
आप स्पष्ट जानै तातें सर्व प्रत्यक्ष है ।

बहुरि प्रत्यक्षके दोय भेद हैं । एक परमार्थ प्रत्यक्ष दूसरा व्यवहार
प्रत्यक्ष । अवधि मनः पर्यय और केवलज्ञान तो स्पष्ट प्रतिभासरूप हैं
ही, तातें पारमार्थिक प्रत्यक्ष हैं । बहुरि नेत्र आदिकतें वरणादिककों
जानिए है, तातें इनकों सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिए, जातें जो एक
वस्तु में मिश्र अनेक वर्ण हैं ते नेत्रकर नीके ग्रहे जाय हैं ।

बहुरि परोक्ष प्रमाण के पांच भेद हैं—१ स्मृति, २ प्रत्यभिज्ञान,
३ तर्क, ४ अनुमान, ५ आगम ।

तहाँ जो पूर्व वस्तु जानी को याद करि जानना सो स्मृति कहिए ।

दृष्टांत कर वस्तु निश्चय कीजिये सो प्रत्यभिज्ञान कहिए ।

हेतु के विचार तें लिया जो ज्ञान सो तर्क कहिए ।

हेतुतें साध्य वस्तुका जो ज्ञान सो अनुमान कहिए ।

आगम तें जो ज्ञान होय सो आगम कहिए ।

ऐसे प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण के भेद किये हैं, सोई स्वानुभव दशा में जो आत्मा को जानिए सो श्रुतज्ञान कर जानिए है । श्रुतज्ञान है सो मतिज्ञान पूर्वक ही है सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष कहे तातें यहाँ आत्मा का जानना प्रत्यक्ष नाहीं । बहुरि अवधि मनःपर्यय का विषय रूपी पदार्थ ही है, केवलज्ञान छद्मस्थक है नाहीं, तातें अनुभवविषे अवधि मनःपर्यय केवल करि आत्मा का जानना नाहीं । बहुरि यहाँ आत्माकूँ स्पष्ट नीके जानै है, तातें पारमार्थिक प्रत्यक्षपना तो सम्भव नाहीं । बहुरि जैसे नेत्रादिकसे जानिए है तैसे एक देश निर्मलता लिये भी आत्मा के असंख्यात प्रदेशादिक न जानिए है तातें सांख्यवहारिक प्रत्यक्षपणे भी सम्भव नाहीं ।

यहाँ पर तो आगम-अनुमानादिक परोक्ष ज्ञान करि आत्मा का अनुभव होय है । जैनागमविषे जैसा आत्मा का स्वरूप कहा है ताकूँ तैसा जान उस विषे परिणामोंको मग्न करै है तातें आगम परोक्ष प्रमाण कहिए । अथवा मैं आत्मा ही हूँ तातें मुझविषे जान है; जहाँ जहाँ ज्ञान है तहाँ तहाँ आत्मा है जैसे सिद्धादिक हैं । बहुरि जहाँ आत्मा नाहीं तहाँ ज्ञान भी नाहीं जैसे मृतक कलेवरादिक हैं । ऐसे अनुमान करि वस्तुका निश्चय कर उस विषे परिणाम मग्न करै है, तात अनुमान परोक्ष प्रमाण कहिए । अथवा आगम अनुमानादिक कर जो वस्तु जानने मैं आया तिसहीकों, याद रखके उस विषे परिणाम मग्न करै है तातें स्मृति कहिए, ऐसे इत्यादिक प्रकार से स्वानुभवविषे परोक्ष प्रमाण कर ही आत्मा का जानना होय है । पीछे जो स्वरूप जाना तिस ही विषे परिणाम मग्न हो हैं ताका कछु विशेष जानपना होता नाहीं ।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो सविकल्प निर्विकल्पविषे जानने का विशेष नाहीं तो अधिक आनन्द कंसे होय है ?

ताका समाधान—सविकल्प दशाविषेँ जो ज्ञान अनेक ज्ञेयकों जानने रूप प्रवर्तें था, वह निर्विकल्प दशाविषेँ केवल आत्मा को ही जानने में प्रवर्त्या, एक तो यह विशेषता है। दूसरी यह विशेषता है जो परिणाम नाना विकल्पविषेँ परिणामें था सो केवल स्वरूप ही सौं तादात्मरूप होय प्रवर्त्या। तीजी यह विशेषता है कि इन दोनों विशेषताओं से कोई वचनातीत अपूर्व आनन्द होय है जो विषय सेवनविषेँ उसके अंश की भी जात नाहीं तातें उस आनन्द को अतेन्द्रिय कहिये।

बहुरि यहाँ प्रश्न—जो अनुभवविषेँ भी आत्मा परोक्ष ही है तो ग्रंथनविषेँ अनुभवकूँ प्रत्यक्ष कैसे कहिये ? कारण कि ऊपरकी गाथा विषेँ ही “पचखे अणुइवो जम्हा” ऐसा कहा है।

ताका समाधान—अनुभव विषेँ आत्मा तो परोक्ष ही है, कछु आत्मा के प्रदेश आकार तो भासते नाहीं। परन्तु जो स्वरूपविषेँ परिणाम मग्न होते स्वानुभव भया, सो वह स्वानुभव प्रत्यक्ष है। स्वानुभवका स्वाद कछु आगम अनुमानादिक परोक्ष प्रमाणादिक कर न जानै है। आप ही अनुभवके रस स्वादकों वेद है। जैसे कोई आंधा पुरुष मिश्री कों आस्वादें है, तहाँ मिश्रीके आकारादिक तो परोक्ष हैं और जिह्वा करि जो स्वाद लिया है वह स्वाद प्रत्यक्ष है, ऐसा जानना।

अथवा जो प्रत्यक्ष की सी नाई होय तिसकों भी प्रत्यक्ष कहिए। जैसे लोकविषेँ कहिए है “हमने स्वप्नविषेँ वा ध्यान विषेँ फलाने पुरुष को प्रत्यक्ष देखा” सो प्रत्यक्ष देखा नाहीं परन्तु प्रत्यक्षकी सी नाई प्रत्यक्षवत् यथार्थ देखा तातें तिसको प्रत्यक्ष कहिए; तैसे अनुभवविषेँ आत्मा प्रत्यक्ष की नाई यथार्थ प्रतिभासै है, तातें इस न्यायकरि आत्मा का भी प्रत्यक्ष जानना होय है, ऐसे कहिये तो दोष नाहीं। कथन तो अनेक प्रकार होय परन्तु वह सर्व आगम अध्यात्म शास्त्रनसौं विरोध न होय तैसे विवक्षा भेदकरि जानना।

यहाँ प्रश्न—जो ऐसे अनुभव कौन गुणस्थान में कहे हैं ?

ताका समाधान—चौथे ही से होय हैं परन्तु चौथे तो बहुत काल के अन्तराल में होय हैं और ऊपर के गुणस्थाने शीघ्र शीघ्र होय हैं।

बहुरि प्रश्न—जो अनुभव तो निर्विकल्प है तहाँ ऊपर के और नीचे के गुणस्थाननि में भेद कहा ?

ताका उत्तर—परिणामन की मग्नता विषे विशेष है। जैसे दोग्य पुरुष नाम ले हैं अर दोही का परिणाम नाम विखै है, तहाँ एक कै तो मग्नता विशेष है अर एक कै स्तोक है तैसे जानना।

बहुरि प्रश्न—जो निर्विकल्प अनुभवविषे कोई विकल्प नाहीं तो शुक्लध्यान का प्रथम भेद प्रथक्त्ववितर्कवीचार कहा, तहाँ प्रथक्त्व-वितर्कवीचार—नाना प्रकारका श्रुत अर वीचार—अर्थ, व्यंजन, योग, संक्रमन रूप ऐसे क्यों कहा ?

तिसका उत्तर—कथन दोग्य प्रकार है। एक स्थूल रूप है, एक सूक्ष्म रूप है। जैसे स्थूलता करि तो छठे ही गुणस्थाने सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत कहा अर सूक्ष्मता कर नवमें गुणस्थान ताई मैथुन संज्ञा कही तैसे यहाँ स्वानुभवविषे निर्विकल्पता स्थूलरूप कहिये है। बहुरि सूक्ष्मताकरि प्रथक्त्ववितर्क वीचारादिक भेद वा कषायादि दशमा गुणस्थान ताई कहे हैं। सो अब आपके जानने में वा अन्यके जानने में आवै ऐसा भाव का कथन स्थूल जानना अर जो आप भी न जानें अर केवली भगवान् ही जानै सो ऐसे भाव का कथन सूक्ष्म जानना। चरणानुयोगादिकविषे स्थूल कथन की मुख्यता है अर करणानुयोगादिक विषे सूक्ष्म कथन की मुख्यता है, ऐसा भेद और भी ठिकाने जानना। ऐसे निर्विकल्प अनुभव का स्वरूप जानना।

बहुरि भाई जी, तुम तीन दृष्टांत लिखे वा दृष्टांत विषे प्रश्न लिखा सो दृष्टांत सर्वाङ्ग मिलता नाहीं। दृष्टांत है सो एक प्रयोजनकों दिखावे है सो यहाँ द्वितीया का विधु (चन्द्रमा), जलविन्दु, अग्निकण ए तो एक देश हैं अर पूर्णमासी का चन्द्र, महासागर तथा अग्निकुण्ड ये सर्व

देश हैं। तैसे ही चौथे गुणस्थानवर्ती आत्माके ज्ञानादि गुण एक देश प्रगट भये हैं तिनकी अर तेरहवें गुणस्थानवर्ती आत्मा के ज्ञानादिक गुण सर्व प्रगट होय हैं तिनकी एक जाति है।

तहाँ प्रश्न—जो एक जाति है तो जैसे केवली सर्व ज्ञेयकों प्रत्यक्ष जानै हैं तैसे चौथे गुणस्थान वाला भी आत्माकों प्रत्यक्ष जानता होगा ?

ताका उत्तर—सो भाईजी, प्रत्यक्षता की अपेक्षा एक जाति नहीं। सम्यग्ज्ञानकी अपेक्षा एक जाति है। चौथे गुणस्थान वाले के मतिश्रुत रूप सम्यग्ज्ञान है और तेरहवें गुणस्थान वाले के केवलरूप सम्यग्ज्ञान है। बहुरि एक देश सर्व देश का तो अन्तर इतना ही है जो मतिश्रुत-ज्ञान वाला अमूर्तिक वस्तु को अप्रत्यक्ष और मूर्तिक वस्तु को भी प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष किंचित् अनुक्रमसों जानै है अर केवलज्ञानी सर्व वस्तुको सर्वथा युगपत् जानै है। वह परोक्ष जानै यह प्रत्यक्ष जानै, इतना ही विशेष है अर सर्व प्रकार एकही जाति कहिए तौ जैसे केवली युगपत् अप्रत्यक्ष अप्रयोजन रूप ज्ञेयकों निर्विकल्परूप जानै तैसे ए भी जानै सो तो है नाहीं, तातें प्रत्यक्ष परोक्ष में विशेष जानना कहा है।

श्लोक—स्याद्वाद केवल ज्ञाने सर्व तत्त्व प्रकाशने ।

भेद साक्षाद साक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतम् भवेत् ॥

अष्टसहस्री दशमः परिच्छेदः १०५ ।

याका अर्थ—स्याद्वाद जो श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान—ये दोय तत्वों के प्रकाशन हारे हैं। विशेष इतना—केवलज्ञान प्रत्यक्ष है, श्रुतज्ञान परोक्ष है। वस्तुरूप से यह दोनों एक दूसरे से भिन्न नाहीं हैं।

बहुरि तुम निश्चय अर व्यवहार सम्यक्त का स्वरूप लिखा है सत्य है; परन्तु इतना जानना, सम्यक्तीके व्यवहार सम्यक्तविषे नि सम्यक्त गर्भित है, सदैव गमन (परिणामन) रूप है।

बहुरि तुम लिख्या—कोई साधर्मी कहै है “आत्माकों प्रत्यक्ष जानें तो कर्मवर्गणाकों प्रत्यक्ष क्यों न जानें ?”

सो कहिए है—आत्माकों प्रत्यक्ष तो केवली ही जानें, कर्मवर्गणा को अवधिज्ञानी भी जानै है ।

बहुरि तुम लिख्या—द्वितीयाके चन्द्रमाकी ज्यों आत्माके प्रदेश ओरे खुले कहो ?

ताका उत्तर—सो दृष्टांत प्रदेशनकी अपेक्षा नाहीं, यह दृष्टांत गुण की अपेक्षा है । जो सम्यक्त्व, स्वानुभव और प्रत्यक्षादिक सम्बन्धी प्रश्न तुमने लिखे थे, तिनका उत्तर अपनी बुद्धि अनुसार लिखा है । तुम हूँ जिनवाणीतें तथा अपनी परणति से मिलाय लेना । विशेष कहाँ ताई लिखिये, जो बात जानिए सो लिखनेमें आवे नाहीं । मिले कछु कहिये भी, सो मिलना कर्माधीन, तातें भला यह है कि चैतन्य स्वरूप की प्राप्तिके उद्यममें रहना व अनुभवमें वर्तना । वर्तमानकालविषे अध्यात्म तत्व तो आत्मा ही है ।

तिस समयसार ग्रन्थकी अमृतचन्द्र आचार्यकृत टीका संस्कृतविषे है अर आगमकी चर्चा गोम्मटसारविषे है तथा और भी अन्यग्रन्थविषे है । जो जानी है, सो सर्व लिखनेमें आवे नाहीं । तातें तुम अध्यात्म तथा आगम ग्रन्थका अभ्यास रखना अर अपने स्वरूपविषे मग्न रहना और तुम कोई विशेष ग्रन्थ जाने हों तो मुझकों लिख भेजना । साधर्मीकें तो परस्पर चर्चा ही चाहिए अर मेरी तो इतनी बुद्धि है नाहीं परन्तु तुम सारिखे भाइनसों परस्पर विचार है, सो अब कहाँ तक लिखिये ? जेते मिलना नाहीं तेतें पत्र तो शीघ्र ही लिखा करो ।

मिती फागुन बदी ५ सं० १८११

—टोडरमल